16.4 कल्याणकारी राज्य की औचित्यता

कल्याणकारी राज्य के उदय के सम्बन्ध में यह तर्क है कि जन कल्याण आश्रितता, कृति हेतु वैयक्तिक दायित्व में स्वायत्तता तथा क्षमता के बंधन, बाज़ार व्यवस्था की स्वतंत्रता के स्रोत के कारणों वश हुआ सही तर्क नहीं है। वस्तुतः स्थिति इसके विपरीत है। कल्याणकारी राज्य के प्रवक्ताओं का तर्क है कि व्यक्ति के पास अवैयक्तिक बाज़ारू शक्तियों के चलते अपने भाग्य पर नियंत्रण नहीं होता; कुछ गुटों/समूहों के लिए बाज़ारू व्यवस्था पूर्वानुमेय नहीं होती। लोगों का उनकी क-टमय स्थिति के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। अतः कल्याणकारी राज्य के आधार क्लास्किी उदारवाद से जुड़े आधारों से बिल्कुल भिन्न ही होने थे। ऐतिहासिक दृ-टि से देखा जाए तो यह जान पड़ता है कि कल्याणकारी राज्य के उदय का एक मुख्य कारक, दोनों विश्व युद्धों के दौरान पश्चिमी संकट में निरन्तर बढ़ती बेरोज़गारी थी और फिर यह मान्यता कि केवल सरकार ही कुछ सुधार कर सकती है। यह ऐसे सिद्धान्त की स्वीकृति थी कि वितरण मात्र आय का वितरण नहीं, अपितु नैतिक कसौटी (जैसे लोगों की आवश्यकताओं व दुःखों आदि) के अनुसार संसाधनों का पुनः वितरण होः सामाजिक कल्याण को सामाजिक न्याय के साथ जोड़ा गया। उदाहरणतः ब्रिटेन में, 1942 की बैवेरिज रिपोर्ट ने पीड़ा/क-ट को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया थाः *अभाव, रोग, अज्ञानता, गंदगी* तथा *आलस्य*। कल्याणकारी राज्य की नींव की स्थापना को यहाँ देखा जा सकता है। कीन्स की वृहत-आर्थिक नीतियों के साथ, कल्याणकारी राज्य का विचार ऐसे सामाजिक चिन्तन के साथ जुड़ गया जिसने बाज़ार को बदलना नहीं था, उसका दो-ा निवारण करना था।

कल्याणकारिता के आधुनिक सिद्धान्त का जन्म कुछेक मूल राजनीतिक अवधारणाओं जैसे स्वतंत्रता, समानता, न्याय आदि की पुनः व्यवस्था पर निर्भर करता था। इन का मूल प्रभाव समाज के स्वरूप के उस पहलू को जो लोगों के एक ढीले-ढाले रूप में दिखाई पड़ता था, ऐसे स्वरूप में बदलना था कि वह लोगों का एक अति घनि-ठ संगठन दिखाई दे। यह तर्क दिया जाने लगा कि यदि संविदावादी सम्बन्धों के फलस्वरूप लोगों को सामाजिक बंधनों में बांधा जा सकता है, तो सामान्य समूह के रूप में नागरिक एक दूसरे के प्रति आर्थिक रूप से भी अधिक/अलग दावे प्रस्तुत कर सकते हैं। राज्य कल्याणकारिता को दया की कृति न मानकर उसी की माँग अधिकार रूप में की जाने लगी। साथ

ही, कल्याणकारिता का विचार आर्थिक क्षेत्र से बाहर भी विकसित होने लगा था। इसे स्वयं ज़रूरत पर केन्द्रित किया गया, यह सोचे बिना कि इसके कारण अथवा इसके परिणाम क्या होंगे। यदि इसके साथ न्यूनतम आय की माँग को तथा सामाजिक न्याय के नाम पर पुनः वितरण को जोड़ दिया जाए, तो हम नागरिकता के आदर्श के निकट आ जाते हैं। ऐसा मात्र नागरिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रताओं द्वारा परिभाि-त नहीं किया जाता, परन्तु इसमें आर्थिक संसाधनों के दावे सम्मिलित किए जा सकते हैं, बाज़ार द्वारा कार्य के बदले में पुरस्कार के रूप में नहीं, अपितु समाज की सदस्यता के फलस्वरूप।

इसके बावजूद कि कल्याणकारी राज्य का विचार उत्तर-युद्ध काल में एक सर्वसम्मति का दृ-टिकोण दर्शाता है, स्वयं उदारवाद में कल्याणकारी राज्य के सैद्धान्तिक औचित्यता पर सहमति नहीं थी। विभिन्न विद्वानों ने कल्याणकारी राज्य की विभिन्न औचित्यताएँ दी थीः किसी ने कहा कि कल्याणकारी राज्य स्वतंत्र व्यापारिक पूंजीवाद के कुप्रभावों को दूर करता है; किसी ने कहा कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ाता है; किसी ने कहा कि यह समतावादी समाज की स्थापना करता है; किसी ने कहा कि यह न्याय (जिसमें निःसंदेह सामाजिक न्याय भी सम्मिलित समझा जाता है) की व्यवस्था करता है; किसी ने कहा कि यह नागरिक अधिकारों को कार्य रूप देता है। इनके अतिरिक्त, कुछ नैतिक तथा पदार्थोन्मुखी औचित्यताएँ भी बतायी जाती हैं। इनमें कुछेक का संक्षित विवरण दिया जा सकता है।

16.4.1 राज्य और बाज़ार

सामाजिक कल्याण के साहित्य में राज्य तथा बाज़ार में एक अंतरविरोध दिखाया जाता है। स्वतंत्र व्यापारिक पूंजीवाद के विरुद्ध मुख्य प्रहार यह बताया जाता है कि यह एक एकाधिकारवादी पूंजीवाद को प्रोत्साहन देता है तथा ऐसी अर्थव्यवस्था की स्थापना करता है जो व्यापारिक संघों, उत्पादकीय संयोजकों, बहुरा-ट्रीय तथा परा-रा-ट्रीय निगमों की शक्तियों के प्रभुत्व में आ जाती है। बदले में, ऐसी व्यवस्था समाज में अनेक प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विरोधाभासों को जन्म देती है। अर्थव्यवस्था में राज्य द्वारा किसी सकारात्मक हस्तक्षेप के अभाव में, एकाधिकारवादी पूंजीवादी कुलीनों (जो अपने सामाजिक दायित्वों का ध्यान नहीं रखते) का श्रमिकों पर शो-ाण आम हो जाता है, बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी बढ़ने लगती है, कारखानों में श्रमिकों को अमानवीय परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, प्रतिस्पर्धा के कारण निम्न मज़दूरी पर काम करना पड़ता है, काम करने के अधिक घन्टों की व्यवस्था, निर्धनता, निरक्षरता, तथा अस्वस्थता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। स्वतंत्र व्यापारिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, सामाजिक-आर्थिक समानता की शत्रु होती है। ग्रीन तथा टानी ने भी बताया कि राज्य द्वारा रा-ट्रीय धन के पुनः वितरण से वंचित करके बाज़ार, समानता तथा अन्याय को और अधिक पोि-त करता है। प्रायः यह भी तर्क दिया जाता है कि पुराने बाज़ारू यंत्र-तंत्र, स्वार्थतता से प्रेरित होते हुए कल्याणकारिता की ज़रूरतों के प्रति सजग नहीं होते, क्योंकि जो बेचारे गरीब अभाव का जीवन व्यतीत करते हैं, बाज़ार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर अपनी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ ही रहते हैं। जैसा कि टिटमस ने कहा है, "पूंजीवाद एक जैविक विफलता है, यह समाज के विलोप को निकट ला रहा है।" उन्होंने बाज़ार-व्यवस्था का खण्डन तो नहीं किया परन्तु, वह यह अवश्य कहते हैं कि जो लोग कल्याणकारिता की आवश्यकता को महसूस करते हैं, बाज़ार उनके आर्थिक अभागता का कारण अवश्य बन जाता है। बाज़ारू सम्बन्ध प्रतिस्पर्धात्मक होने के कारण विभाजनकारी सम्बन्ध भी होते हैं। समाज की कल्याणकारिता व्यक्ति के अपने कल्याण से जुड़े अनुभवों तक ही न केवल सीमित हो कर रह जाती है, अपितु उसके अपने विवेकीय तथा साम्प्रदायिक भावनाएँ भी उसके कल्याण की संकल्पना को बनाने-संवारने में सहायक बन जाती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि समाज के सदस्य होने के रूप में व्यक्ति 'आर्थिक किराया' लेते हैं। यह आर्थिक किराया

वह अंतर है, जो समाज से बाहर की आय जो व्यक्तियों को प्राप्त होती है तथा उस आय में जो उन्हें सामाजिक सहयोग के अस्तित्व के कारण प्राप्त होती है, जिसके बनाने में उनकी अपनी कोई भूमिका नहीं होती। इस प्रकार कल्याणकारिता एक प्रकार से सामूहिक संसाधनों से प्राप्त क्षतिपूर्ति का एक रूप होती है। इस प्रकार की कल्याणकारिता के कार्य को राज्य बखुबी कर सकता है। राज्य लोगों की दशाओं में, जिनमें वह रहते हैं, सुधार कर सकता है; वह उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा उनकी सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा के लिए सुविधाएँ प्रदान कर सकता है। राज्य अर्थव्यवस्था को कुछ इस प्रकार रूपांतरित कर सकता है कि समाज में रहने वाले सभी नागरिकों को, बिना स्तर व वर्गीय स्थिति के लिए सामाजिक जीवन का न्यूनतम स्तर उपलब्ध हो सके।

16.4.2 व्यक्तिवादी

कल्याणकारी राज्य का नवीन नैतिक औचित्य व्यक्तिवादी नींव पर आधारित था। ऐसा माना जाता रहा है कि बाज़ारी शक्ति दुख/क-ट का कारण होती हैं और इस कारण से वैयक्तिक स्वायत्तता को क्षति पहुँचती है। यह तथ्य अपने आपमें प्रत्येक व्यक्ति की समान स्वायत्तता के उदारवादी विश्वास के साथ मेल नहीं खाता। अतः वे व्यक्ति जो वंचन की स्थिति में हैं, उसे सहायता न करके (और जो सहायता अपेक्षाकृत अधिक खर्चीली भी नहीं है), उस व्यक्ति को नैतिक रूप से नुकसान पहुँचाना है। दूसरे शब्दों में, कल्याणकारिता किसी नैतिकता की कृति नहीं है, अपितु ज़रूरत से जुड़ा एक कर्त्तव्य है। यह तथ्य व्यक्ति की स्वायत्तता में अंत-स्थापित तथ्य है। एक व्यक्ति जिसे उत्पीड़न न किए जाने के रूप में औपचारिक रूप से स्वतंत्र कहा जाता है, वह, वास्तव में, स्वतंत्र होता, यदि उसकी स्वायत्त इच्छा से उसकी चयन शक्तियों को अभिव्यक्ति नहीं मिलती। ऑलबर्ट वील के अनुसार, "कुछेक भौतिक शर्तें विस्तृत परियोजनाओं को पूरा करने के लिए अनिवार्यतः होनी ही चाहिए"। ऐसा नहीं है कि लोग मूलतः प्राथमिकताएँ बनाते हैं, अपितु कल्याणकारिता की सोच तथा उसके व्यवहार के अभाव में, लोगों की प्राथमिकताएँ बुरी तरह से सीमित हो जाती हैं। यदि उदारवाद में व्यक्तियों की समान स्वायत्तता ज़रूरी है, और बाज़ार ऐसा कुछ उपलब्ध कराने में विफल होता है, तो उदारवादी सामाजिक व्यवस्था को बनाने व बचाने के लिए सरकारी प्रयास करना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार जैसा कि रेमण्ड प्लांट का मत है, "किसी भी कार्य के लिए मौलिक ज़रूरतों की संतु-टि पहले ज़रूरी है।" ज़रूरतों की वस्तुपरकता के लिए ज़रूरी है कि वे नैतिक स्वायत्तता की प्राप्ति के लिए अनिवार्य साधनों के रूप में कार्य करें। यह भी याद रहना चाहिए कि जहाँ इच्छाएँ भले ही दूसरों पर दावे बनने का आधार बनें या न बनें, आवश्यकताएँ ऐसे दावे बन सकती हैं। यह इसलिए है कि ज़रूरतों की पूर्ति का महत्व इस तथ्य में है कि यदि ऐसी पूर्ति न हो रही हो, तो ऐसा कुछ किसी दूसरे को नैतिक क्षति पहुँचाने के बराबर होता है।

16.4.3 वैयक्तिक स्वतंत्रता की संवृद्धिता

कल्याणकारी राज्य की औचित्यता का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसके माध्यम से *वैयक्तिक स्वतंत्रता में वृद्धि* होती है। वास्तव में, कल्याणकारी राज्य स्वतंत्रता के नकारात्मक रूप से उसके सकारात्मक रूप की पुनः व्याख्या का एक सहज उपपरिणाम है। सकारात्मक स्वतंत्रता का बौद्धिक व मूल स्रोत टी एन ग्रीन तथा बाद में बोसांक, रिचि, हॉबहाउस, लास्की, आदि में मिलता है। स्वतंत्रता की परिभा-ा करते हुए ग्रीन ने कहा था "स्वतंत्रता ऐसा तथ्य है, जो अति कीमती तथ्य है और जिस का अर्थ है कुछ ऐसा करने की सकारात्मक शक्ति तथा क्षमता जो करने अथवा आनन्द लेने योग्य हो और जिसे हम दूसरों के साथ समान रूप से कह सकते हों अथवा आनन्द ले सकते हैं।" उदारवादी

राज्य का कार्य स्वतंत्र समाज के अस्तित्व को बल देना होता है। ग्रीन इस नि-क-र्ा पर पहुँचा था कि राज्य का इसके अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नहीं है कि वह जीवन की उन परिस्थितियों को बनाए रखें जहाँ नैतिकता संभव हो। राज्य का कार्य बाहरी बाधाओं को दूर करते हुए व्यक्ति को आत्मसिद्ध के आदर्श को प्राप्त करने में सहायता करना है। राज्य का मुख्य कार्य ऐसी बाहरी परिस्थितियों की स्थापना है, जहाँ लोगों की अपनी क्षमताओं को निखारने में कम से कम बाधाएँ हों। इसी पृ-ठभूमि में राज्य को कल्याणकारी राज्य बनाए जाने पर बल दिया गया है। ऐसा करना आत्म-निर्धारण हेतु वैयक्तिक क्षमता के उदारीकरण से कम नहीं था। यदि निरक्षरता, अज्ञानता, निर्धनता, शराबखोरी, गंदगी आदि का उन्मूलन होता है, तो उससे व्यक्ति की स्वतंत्रता में बढ़ोतरी होती है। इन आधारों पर ग्रीन ने राज्य हस्तक्षेप को अनिवार्य शिक्षा दिलाने में, शराबबन्दी, स्वास्थ्य को कार्य रूप देने में तथा भवि-य पर राज्य नियंत्रण को समाज में तथा समाज हेतु वैयक्तिक व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य माना था। इस बात पर ज़ोर देते हुए कि राज्य का काम अपने जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर तथा उन परिस्थितियों की स्थापना करके जिनमें व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को प्राप्त किया जा सकता है, ग्रीन ने 20वीं शताब्दी के कल्याणकारी राज्य की नींव डाली थी। प्रथम विश्व युद्ध, रूस की समाजवादी क्रान्ति, फासीवाद का उदय तथा 20वीं शताब्दी के पहले अर्द्ध भाग में आर्थिक मंदी ने कल्याणकारी राज्य के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया जो हमें लास्की, कीन्स, रूज़वैल्ट, गैलब्रैथ की रचनाओं में प्रतिबंबित होता है। उदाहरणार्थ, लास्की ने स्वतंत्रता को सामान्य जीवन में कुछेक जोड़ने की शक्ति मानते हुए एक ऐसा योगदान बताया जो (i) व्यक्ति को अपना योगदान देने में सहायता करता है तथा जहाँ (ii) संस्थाएँ उसके मार्ग में बाधाएँ नहीं बनतीं। पहली अर्थात् (i) स्थिति राज्य द्वारा अधिकारों का प्रयोजन करके सुरक्षित की जा सकती है तथा दूसरी अर्थात् (ii) राज्य द्वारा नियंत्रित कानूनों द्वारा उपलब्ध करायी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, राज्य को स्वतंत्रता का स्रोत तथा शर्त समझा जाने लगा। जैसा कि लास्की ने लिखा, "राज्य अधिक से अधिक एक समयोजनकर्त्ता है, एक समन्वयकर्त्ता है और जिस सत्ता/शक्ति का वह प्रयोग करता है, वह तभी नैतिक रूप से वैध है, यदि उससे स्वतंत्रता की शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है"। विशे-ातः इसका अर्थ था आर्थिक स्वतंत्रता की पुनः व्याख्या करना - ऐसी व्याख्या करना कि "एक व्यक्ति को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अवसर व उसकी सुरक्षा को उचित महत्व दिए जाने का तथ्य निहित हो"; इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति को बेरोज़गारी व अपर्याप्तता के निरन्तर भय से पूर्ण *मुक्ति* प्राप्त हो जो मुक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व की समस्त शक्ति का सार होती है।

16.4.4 समानता

स्वतंत्रता के साथ-साथ, कल्याणकारी राज्य का सामाजिक चिन्तन समानता से भी सम्बंधित रहा है। समानता का औचित्य सामाजिक व आर्थिक असमानताओं के विवेकीय रूप में नहीं, और न ही ज़रूरतों के अस्तित्व तथा उनके उन्मूलन के रूप में, अपितु इस रूप में कि समतावाद अपने आपमें एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसे आर. एच. टॉनी ने "असमानता का पंथ" कहा था, जिसका कल्याणकारी राज्य के विचारकों ने निरंतर खण्डन किया था। यह भी ठीक है कि उदारवादी कल्याणकारी चिन्तन ने कभी भी असमझौतावादी समतावाद की वकालत नहीं की है, अपितु ऐसे समतावाद का तर्क दिया है, जो क्लास्किी उदारवाद के मूल्यों से परे जहाँ तक संभव हो, पूंजीवादी बाज़ारू समाज में आर्थिक व सामाजिक समानताओं को अपने में स्थान दे सके। वस्तुतः कल्याणकारिता में समानता की अमूल्य स्थिति होती है। यह तर्क दिया जाता है कि धन की अधिकतम विशे-ाताओं के कारण जहाँ लोगों में पृथक्करण हो जाता है, वहाँ विनिमय सम्बन्धों के मूल्यों पर विकृत रूप के समीकरण/समझौते करने पड़ जाते हैं। पूंजीवादी समाजों में कुछेक प्रवेशकर्त्ता बाज़ार में दूसरों की अपेक्षा कुछ लाभकारी स्थिति

में होते हैं, इसलिए बाज़ार से प्राप्त लाभ में असमानता की झलक स्प-ट दिखाई दे देती है। निरन्तर बढ़ते अवसरों का क्षेत्र असमानता का स्रोत नहीं होता, अपितु स्वयं उस असमानता का स्रोत बन जाता है। एक प्रश्न बार बार उठता हैः कल्याणकारिता के दर्शन में निहित पारंपरिक समानता के मूल्य का महत्व क्यों हो? ऐसा इसलिए कि सभी समाजों में विधिवत असमानता से जुड़े लक्षण होते हैं, जिन्हें राजनीतिक तरीकों से शुद्ध करना थोड़ा-बहुत ज़रूरी समझा जाता है। आधुनिक कानूनी तथा राजनीति असमानताएँ आर्थिक असमानताओं के साथ-साथ नहीं होतीं। पूंजी से उदारवादी व्यवस्था में समानता नियमों के विपरीत राजनीतिक शक्ति खरीदी जा सकती है। समतावाद के निराशाजनक परिणामों के बावजूद, कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्तकार महसूस करते हैं कि समतावादी प्रयासों से कल्याणकारिता में वृद्धि करना अभी भी एक नैतिक दायित्व है, जब तक कि ऐसा करने में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कुछ (उनके लिए जो पीड़ित हैं) पर कुप्रभाव नहीं पड़ता। इस संदर्भ में तथा इस पृ-ठभूमि में कुछ न करने का अर्थ आर्थिक असमानता के स्तर को स्वीकृति प्रदान करना है, जो अपने आपमें बाकी के समाज पर कुप्रभाव या कल्याणकारी प्रभाव को कम करना है।

16.4.5 अधिकार

कुछेक विचारकों ने कल्याणकारी राज्य को अधिकारों के संदर्भ में उचित ठहराया है। एच. एल. ए. हार्ट के अनुसार बल के प्रयोग तथा बल के डर के दायरे में अधिकारों का एक विशे-ा निहित अर्थ, उसे प्राप्त करना जो सही अथवा उचित है, अथवा किसी के लिए कुछ करना, जो करना हो से जुड़ा है। ऐसी परिस्थितियों में ही केवल दूसरे व्यक्ति की उत्पीड़नता को कानूनी समझा जाता है। यदि कोई कल्याणकारिता से जुड़े अधिकार हैं, तो यह तभी ऐसे अधिकार हो सकते हैं जब संसाधनों के स्वामित्व की अपेक्षा उसके पुनः वितरण हेतु उत्पीड़नता की औचित्यता सही मानी जाए; कल्याणकारिता परोपकारिता नहीं है, अपितु यह तो न्याय अथवा हकदारी का लक्षण है। तथाथित, कल्याणकारी सिद्धान्त के लिए इसके दो निहितार्थ हो सकते हैंः (i) कल्याणकारी अधिकार परिचित नकारात्मक अधिकारों के सममिति हों (अर्थात् दूसरों के आक्रमिक गतिविधि से बचाव का अधिकार), (ii) कल्याणकारी अधिकारों के अस्तित्व का भाव होगा कि दूसरे अपने व्यवहार को अनुकूल बनाए (अर्थात् कल्याणकारी अधिकारों के दावेदार बन जाए)। यह और बात है कि आलोचकों का विश्वास है कि नकारात्मक तथा सकारात्मक अधिकारों के बीच कोई स्प-ट सममिति नहीं हो सकती, क्योंकि सकारात्मक अधिकार अभेदकारी होते हैं और साथ ही साथ यह पूर्णतः न्यायसंगत भी नहीं होते।

16.4.6 नागरिकता

अधिकारों के साथ-साथ नागरिकता का सिद्धान्त भी कल्याणकारी राज्य के साथ जुड़ा हुआ है। इसका लाभ यह है कि कल्याणकारी दावों को विशे-ा समाजों पर सीमित भी किया जा सकता है तथा सिद्धान्त रूप में लोगों के बीच ऐसी समानता भी स्थापित हो सकती है, जो चयन की क्षमता से इतनी नहीं जुड़ी होती जितनी कि सामूहिक समाज की सदस्यता से संबंधित होती है। इसका साधारणतः यह अर्थ होता है कि उदारवादी लोकतंत्र के विकास में पनपे संसाधनों पर दाव कानूनी तथा राजनीतिक अधिकारों के विस्तार हैं। टी. एच. मार्शल ने उदारवादी लोकतंत्र के विकास के क्रम में नागरिकता के आर्थिक पहलू को अंकित किया था। ब्रिटिश समाज के संदर्भ में बात करते हुए, मार्शल ने नागरिकता सम्बन्धी अधिकारों की तीन श्रेणियों की पहचान की थीः (i) कानूनी - इसमें स्वतंत्र अभिव्यक्ति, सम्पत्ति, कानून के समक्ष समानता, तथा नागरिक स्वतंत्रताओं के पारंपरिक अधिकार सम्मिलित किए थे, (ii) राजनीतिक - इसमें लोकतंत्र के सभी राजनीतिक अधिकारों को शामिल किया गया;

(iii) सामाजिक - वे कल्याणकारी अधिकार जो व्यक्ति को संसाधनों की हकदारी प्रदान करते हैं। कानूनों द्वारा पूंजीवाद में सुधार करना सामाजिक नागरिकता का एक प्रयास था। मूल शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा जैसे सार्वजनिक प्रावधानों का विकास ऐसे प्रयास थे, जिनके द्वारा पूंजी व श्रम में धन-सम्बन्धों के अंतर्सम्बंधों का परिवर्तन किया गया। न्यूनतम मज़दूरी, काम के घंटे, बच्चों के रोज़गार, काम करने की स्थितियों, व्यवसायिक सुरक्षा तथा व्यवसायिक दुर्घटनाओं में क्षतिपूर्ति से सम्बंधित कानूनों की व्यवस्था से पूंजीपति वर्ग अपने काम करने वालों के रो-ा से बच गए। मालिकों व श्रमिकों के बीच तनावों को दूर करने अथवा उनको सुलझाने में राज्य द्वारा सकारात्मक हस्तक्षेप तथा सरकार की कर व्यय की नीतियों के पुनः निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए गए। यद्यपि सामाजिक नागरिकता ने वर्गीय वि-ामताओं का उन्मूलन नहीं किया और न ही इसने पूंजीवाद के आर्थिक आधार का मौलिक रूप से परिवर्तन किया, फिर भी कल्याणकारी राज्य के माध्यम से कुछेक सामाजिक असमानताओं को कम अवश्य किया गया, विशे-ातः उन असमानताओं को ज़रूर कम किया है जो बाज़ार के परिचलन से जुड़ी हुई थीं। नागरिकता की मुक्तिमूलकता इस की उस क्षमता में निहित है कि इसने सब व्यक्तियों को समाज में एकीकृत कर दिया है। उदाहरणतः नागरिकता से जुड़े आर्थिक अधिकारों की उपस्थिति समाज में वर्गीय तनावों को और अधिक विकृत रूप धारण करने से रोकती है। नागरिकता वर्ग पर परिवर्तन थौपती है। यद्यपि मार्शल बाज़ार-व्यवस्था का विरोध नहीं करते, परन्तु वह अप्रतिबंधित पूंजीवाद को सामाजिक रूप से विनाशमय समझते थे। दूसरे नागरिकता सिद्धान्तकार भी नागरिकता के तीन रूपों को एक-दूसरे से संबंधित मानते हैं। उदाहरण के लिए, स्वतंत्र भा-ाण एवं अभिव्यक्ति का अधिकार तथा कानूनी समानता का अधिकार कल्याणकारिता रूपी कुछ व्यवस्था की माँग करते हैं, यदि ऐसे अधिकारों को मात्र औपचारिकता से ऊपर होना है। वस्तुतः उदारवादी बहुलवाद तभी संभव हो सकता है, जहाँ आर्थिक कल्याणकारिता को कुछ सीमा तक संभावना की गारण्टी होती है।

16.4.7 न्याय

उपर्युक्त औचित्यों के अतिरिक्त, समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त में न्याय की कल्याणकारिता के साथ जोड़ने के प्रयास जारी हैं। जॉन राल्स ने अपनी रचना *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस* में इस बात पर ज़ोर दिया है कि न्याय समाज का पहला गुण है, और फिर इसे अन्यों की अपेक्षा कल्याणकारी दृ-टि से प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। रॉल्स की न्याय की अवधारणा एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा है, ऐसी अवधारणा जो संसाधनों के वैधपूर्ण वितरण से तथा लोगों के हित-स्तरों से सम्बंधित है। वास्तव में, अपनी वैयक्तिक पद्धति के बावजूद उसके न्याय का सिद्धान्त एक मानकीय सिद्धान्त है, जो अन्य उपयोगितावादी सिद्धान्तों से अलग समाज के लिए कल्याणकारी कार्यों को असूल की अपेक्षा सार से अधिक जुड़ा मानता है। उसके न्याय का सिद्धान्त उदारवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के निकटतम है। उसका न्याय का पहला सिद्धान्त यह कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को समान मूलभूत स्वतंत्रता की व्यापक व्यवस्था की प्राप्ति का समान अधिकार प्राप्त है जोकि सभी को समान रूप से मिलें। उसके न्याय का दूसरा सिद्धान्त यह कहता है कि सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए कि इन दोनों से (i) न्यूनतम लाभान्वितों अर्थात् सबसे अधिक पिछड़ों को अधिकतम लाभ हो तथा (ii) प्रत्येक को उचित अवसर की समानता की स्थिति में पद और प्रति-ठा की प्राप्ति सुलभ हो। कानून का लक्ष्य दीर्घकालीन सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो, तथा इस नियम की पूर्ति हो जो उचित समानता तथा अवसरों के दायरे के अंतर्गत ऐसी आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियाँ बनाए कि वह न्यूनतम लाभान्वितों की दीर्घकालीन आकांक्षाओं की अधिकतमता

प्राप्त कर सके। सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर रॉल्स पुनः वितरित न्याय का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि सरकार का वास्तविक कार्य सामाजिक व्यवस्था को न केवल बनाए रखना है, अपितु वितरणकारी न्याय का प्रतीक है, जो ज़रूरतमंदों की ज़रूरतों को उच्चतम सामाजिक महत्व देता है। तथापि रॉल्स पूर्णतः समतावादी वितरण में विश्वास नहीं रखते। सामाजिक अच्छाई की अधिकतमता ने उपयोगितावादी रूप की अपेक्षा वह न्यूनतम लाभान्वितों की स्थिति सुधारने हेतु, विशे-ाधिकारों तथा असमानताओं की वकालत करते हैं। रॉल्स के अनुसार ऐसा इसलिए कि प्राकृतिक योग्यताएँ तथा जन्म से जुड़ी परिस्थितियों के साथ ही विशे-ाधिकार तथा असमानताएँ जुड़ जाती हैं, और क्योंकि ऐसी असमानताओं को समाप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए एक न्याययुक्त समाज विशे-ाधिकारों की क्षतिपूर्ति को पूरा करने के लिए अपने याग्यों की योग्यताओं सहित संसाधनों को न्यूनतम भाग्यशाली व्यक्तियों की दशा सुधारने हेतु कार्यरत रहेगा। उनको जो उच्चतर योग्यता सम्पन्न हैं, उन्हें पुरस्कार देना नहीं है, अपितु उनकी जो अपेक्षाकृत कम योग्यता सम्पन्न हैं, क्षतिपूर्ति करना है। सारांश यह है कि क्लास्किी उदारवाद के अहस्तक्षेप दृ-टिकोण से ऊपर उठते हुए जो व्यक्ति को अकेला छोड़े रखने की बात करता है, रॉल्स न्याय के ऐसे सिद्धान्त की वकालत करते हैं जो उदारवादी लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप है। जैसा कि वह लिखते हैं, "यदि कानून तथा सरकार को बाज़ार की प्रतिस्पर्धा बनाए रखना है, संसाधनों का सम्पूर्ण प्रयोग करना है, समय और काल के दायरों में सम्पत्ति तथा धन का विस्तृत वितरण करना है, उचित सामाजिक न्यूनतमता बनाए रखना है, तो अवसरों की समानता तथा सर्व शिक्षण के दायरे में परिणामिक वितरण न्याययुक्त होगा।" कल्याणकारिता के संदर्भ में रॉल्स एक मूक समतावादी है जो वैयक्तिक योग्यता से प्राप्त मूर्त सम्पत्ति के स्वामित्व के परे पुनःवितरण की नैतिकता पर ज़ोर देते हैं। अतः ऐसा लगता है मानो राल्स न्याय की वैयक्तिक छवि पर कल्याणकारिता के नियोग की स्थापना करना चाहते हों।